श्रीमद् भगवदगीता – पंद्रहवाँ अध्याय

अनुक्रम

पंद्रहवें अध्याय का माहात्म्य 1
पंद्रहवाँ अध्यायः पुरुषोत्तमयोग 2

पंद्रहवें अध्याय का माहात्म्य

श्रीमहादेवजी कहते हैं – पार्वती ! अब गीता के पंद्रहवें अध्याय का माहात्म्य सुनो। गौड़ देश में कृपाण नामक एक राजा थे, जिनकी तलवार की धार से युद्ध में देवता भी परास्त हो जाते थे। उनका बुद्धिमान सेनापति शस्त्र और शास्त्र की कलाओं का भण्डार था। उसका नाम था सरभमेरुण्ड। उसकी भुजाओं में प्रचण्ड बल था। एक समय उस पापी ने राजकुमारों सहित महाराज का वध करके स्वयं ही राज्य करने का विचार किया। इस निश्चय के कुछ ही दिनों बाद वह हैजे का शिकार होकर मर गया। थोड़े समय में वह पापात्मा अपने पूर्वकर्म के कारण सिन्धु देश में एक तेजस्वी घोड़ा हुआ। उसका पेट सटा हुआ था। घोड़े के लक्षणों का ठीक-ठाक ज्ञान रखने वाले किसी वैश्य पुत्र ने बहुत सा मूल्य देकर उस अश्व को खरीद लिया और यत्न के साथ उसे राजधानी तक ले आया। वैश्यकुमार वह अश्व राजा को देने को लाया था। यद्यपि राजा उस वैश्यकुमार से परिचित थे, तथापि द्वारपाल ने जाकर उसके आगमन की सूचना दी। राजा ने पूछाः किसलिए आये हो? तब उसने स्पष्ट शब्दों में उत्तर दियाः 'देव ! सिन्धु देश में एक उत्तम लक्षणों से सम्पन्न अश्व था, जिसे तीनों लोकों का एक रत्न समझकर मैंने बहुत सा मूल्य देकर खरीद लिया है।' राजा ने आज्ञा दीः 'उस अश्व को यहाँ ले आओ।'

वास्तव में वह घोड़ा गुणों में उच्चैःश्रवा के समान था। सुन्दर रूप का तो मानो घर ही था। शुभ लक्षणों का समुद्र जान पड़ता था। वैश्य घोड़ा ले आया और राजा ने उसे देखा। अश्व का लक्षण जानने वाले अमात्यों ने इसकी बड़ी प्रशंसा की। सुनकर राजा अपार आनन्द में निमग्न हो गये और उन्होंने वैश्य को मुँहमाँगा सुवर्ण देकर तुरन्त ही उस अश्व को खरीद लिया। कुछ दिनों के बाद एक समय राजा शिकार खेलने के लिए उत्सुक हो उसी घोड़े पर चढ़कर वन में गये। वहाँ मृगों के पीछे उन्होंने अपना घोड़ा बढ़ाया। पीछे-पीछे सब ओर से दौड़कर आते हुए समस्त सैनिकों का साथ छूट गया। वे हिरनों द्वारा आकृष्ट होकर बहुत दूर निकल गये। प्यास ने उन्हें व्याकुल कर दिया। तब वे घोड़े से उतरकर जल की खोज करने लगे। घोड़े को तो उन्होंने वृक्ष के तने के साथ बाँध दिया

और स्वयं एक चट्टान पर चढ़ने लगे। कुछ दूर जाने पर उन्होंने देखा कि एक पत्ते का टुकड़ा हवा से उड़कर शिलाखण्ड पर गिरा है। उसमें गीता के पंद्रहवें अध्याय का आधा श्लोक लिखा हुआ था। राजा उसे पढ़ने लगे। उनके मुख से गीता के अक्षर सुनकर घोड़ा तुरन्त गिर पड़ा और अश्व शरीर को छोड़कर तुरंत ही दिव्य विमान पर बैठकर वह स्वर्गलोक को चला गया। तत्पश्चात् राजा ने पहाड़ पर चढ़कर एक उत्तम आश्रम देखा, जहाँ नागकेशर, केले, आम और नारियल के वृक्ष लहरा रहे थे। आश्रम के भीतर एक ब्राह्मण बैठे हुए थे, जो संसार की वासनाओं से मुक्त थे। राजा ने उन्हे प्रणाम करके बड़े भक्ति के साथ पूछाः 'ब्रह्मन् ! मेरा अश्व अभी-अभी स्वर्ग को चला गया है, उसमें क्या कारण है?

राजा की बात सुनकर त्रिकालदर्शी, मंत्रवेत्ता और महापुरुषों में श्रेष्ठ विष्णुशर्मा नामक ब्राह्मण ने कहाः 'राजन ! पूर्वकाल में तुम्हारे यहाँ जो सरभमेरुण्ड नामक सेनापति था, वह तुम्हें पुत्रों सहित मारकर स्वयं राज्य हड़प लेने को तैयार था। इसी बीच में हैजे का शिकार होकर वह मृत्यु को प्राप्त हो गया। उसके बाद वह उसी पाप से घोड़ा हुआ था। यहाँ कहीं गीता के पंद्रहवें अध्याय का आधा श्लोक लिखा मिल गया था, उसे ही तुम बाँचने लगे। उसी को तुम्हारे मुख से सुनकर वह अश्व स्वर्ग को प्राप्त हुआ है।'

तदनन्तर राजा के पार्श्ववर्ती सैनिक उन्हें ढूँढते हुए वहाँ आ पहुँचे। उन सबके साथ ब्राह्मण को प्रणाम करके राजा प्रसन्नतापूर्वक वहाँ से चले और गीता के पंद्रहवें अध्याय के श्लोकाक्षरों से अंकित उसी पत्र को बाँच-बाँचकर प्रसन्न होने लगे। उनके नेत्र हर्ष से खिल उठे थे। घर आकर उन्होंने मन्त्रवेत्ता मन्त्रियों के साथ अपने पुत्र सिंहबल को राज्य सिंहासन पर अभिषिक्त किया और स्वयं पंद्रहवें अध्याय के जप से विशुद्धचित्त होकर मोक्ष प्राप्त कर लिया।

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

पंद्रहवाँ अध्यायः पुरुषोत्तमयोग

चौदहवें अध्याय में श्लोक 5 से 19 तक तीनों गुणों का स्वरूप, उनके कार्य उनका बंधनस्वरूप और बंधे हुए मनुष्य की उत्तम, मध्यम आदि गतियों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया। श्लोक 19 तथा 20 में उन गुणों से रहित होकर भगवद् भाव को पाने का उपाय और फल बताया। फिर अर्जुन के पूछने से 22वें श्लोक से लेकर 25वें श्लोक तक गुणातीत पुरुष के लक्षणों और आचरण का वर्णन किया। 26वें श्लोक में सगुण परमेश्वर को अनन्य भक्तियोग तथा गुणातीत होकर ब्रह्मप्राप्ति का पात्र बनने का सरल उपाय बताया।

अब वह भक्तियोगरूप अनन्य प्रेम उत्पन्न करने के उद्देश्य से सगुण परमेश्वर के गुण, प्रभाव और स्वरूप का तथा गुणातीत होने में मुख्य साधन वैराग्य और भगवद् शरण का वर्णन करने के लिए पंद्रहवाँ अध्याय शुरु करते हैं। इसमें प्रथम संसार से वैराग्य पैदा करने हेतु भगवान तीन श्लोक द्वारा वृक्ष के रूप में संसार का वर्णन करके वैराग्यरूप शस्त्र द्वारा काट डालने को कहते हैं।

।। अथ पंचदशोऽध्यायः ।।

श्रीभगवानुवाच

ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित्।।1।।

श्री भगवान बोलेः आदिपुरुष परमेश्वररूप मूलवाले और ब्रह्मारूप मुख्य शाखावाले जिस संसाररूप पीपल के वृक्ष को अविनाशी कहते हैं, तथा वेद जिसके पत्ते कहे गये हैं – उस संसाररूप वृक्ष को जो पुरुष मूलसहित तत्त्व से जानता है, वह वेद के तात्पर्य को जानने वाला है।(1)

अधश्चोर्ध्वं प्रसृतास्तस्य शाखा
गुणप्रवृद्धा विषयप्रवालाः।
अधश्च मूलान्यनुसंततानि
कर्मानुबन्धीनि मनुष्यलोके।।2।।

उस संसार वृक्ष की तीनों गुणोंरूप जल के द्वारा बढ़ी हुई और विषय-भोगरूप कोंपलोंवाली देव, मनुष्य और तिर्यक् आदि योनिरूप शाखाएँ नीचे और ऊपर सर्वत्र फैली हुई हैं तथा मनुष्यलोक में कर्मों के अनुसार बाँधनेवाली अहंता-ममता और वासनारूप जड़ें भी नीचे और ऊपर सभी लोकों में व्याप्त हो रही हैं।(2)

न रूपमस्येह तथोपलभ्यते
नान्तो न चादिर्न च सम्प्रतिष्ठा।
अश्वत्थमेनं सुविरुढमूल-
मसङ्गशस्त्रेण दृढेन छित्वा।।3।।
ततः पदं तत्परिमार्गितव्यं
यस्मिन्गता न निवर्तन्ति भूयः।
तमेव चाद्यं पुरुषं प्रपद्ये
यतः प्रवृत्तिः प्रसूता पुराणी।।4।।

इस संसार वृक्ष का स्वरूप जैसा कहा है वैसा यहाँ विचारकाल में नहीं पाया जाता, क्योंकि न तो इसका आदि है और न अन्त है तथा न इसकी अच्छी प्रकार से स्थिति ही है। इसलिए इस अहंता-ममता और वासनारूप अति दृढ़ मूलों वाले संसाररूप पीपल के वृक्ष को वैराग्यरुप शस्त्र द्वारा काटकर। उसके पश्चात् उस परम पदरूप परमेश्वर को भली भाँति खोजना चाहिए, जिसमें गये हुए पुरुष फिर लौटकर संसार में नहीं आते और जिस परमेश्वर से इस पुरातन संसार-वृक्ष की प्रवृत्ति विस्तार को प्राप्त हुई है, उसी आदिपुरुष नारायण के मैं शरण हूँ – इस प्रकार दृढ निश्चय करके उस परमेश्वर का मनन और निदिध्यासन करना चाहिए।(3,4)

निर्मानमोहा जितसङ्गदोषा
अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः।
द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञै-
र्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत्।।5।।

जिसका मान और मोह नष्ट हो गया है, जिन्होंने आसक्तिरूप दोष को जीत लिया है, जिनकी परमात्मा के स्वरुप में नित्य स्थिति है और जिनकी कामनाएँ पूर्णरूप से नष्ट हो गयी हैं- वे सुख-दुःख नामक द्वन्द्वों से विमुक्त ज्ञानीजन उस अविनाशी परम पद को प्राप्त होते हैं।(5)

न तद् भासयते सूर्यो न शशांको न पावकः।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम।।6।।

जिस परम पद को प्राप्त होकर मनुष्य लौटकर संसार में नहीं आते, उस स्वयं प्रकाश परम पद को न सूर्य प्रकाशित कर सकता है, न चन्द्रमा और अग्नि ही। वही मेरा परम धाम है।(6)

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।
मनःषष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति।।7।।
शरीरं यदवाप्नोति यच्चाप्युतक्रामतीश्वरः।
गृहीत्वैतानि संयाति वायुर्गन्धानिवाशयात्।।8।।
श्रोत्रं चक्षुः स्पर्शनं च रसनं घ्राणमेव च।
अधिष्ठाय मनश्चायं विषयानुपसेवते।।9।।

इस देह में यह सनातन जीवात्मा मेरा अंश है और वही इस प्रकृति में स्थित मन और पाँचों इन्द्रियों को आकर्षित करता है।(7)

वायु गन्ध के स्थान से गन्ध को जैसे ग्रहण करके ले जाता है, वैसे ही देहादि का स्वामी जीवात्मा भी जिस शरीर का त्याग करता है, उससे इस मन सहित इन्द्रियों को ग्रहण करके फिर जिस शरीर को प्राप्त होता है- उसमें जाता है।(8)

यह जीवात्मा श्रोत्र, चक्षु और त्वचा को तथा रसना, घ्राण और मन को आश्रय करके- अर्थात् इन सबके सहारे से ही विषयों का सेवन करता है।(9)

उत्क्रामन्तं स्थितं वापि भुंजानं वा गुणान्वितम्।
विमूढा नानुपश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः।।10।।

शरीर को छोड़कर जाते हुए को अथवा शरीर में स्थित हुए को अथवा विषयों को भोगते हुए को इस प्रकार तीनों गुणों से युक्त हुए को भी अज्ञानीजन नहीं जानते, केवल ज्ञानरूप नेत्रोंवाले विवेकशील ज्ञानी ही तत्त्व से जानते हैं।(10)

यतन्तो योगिनश्चैनं पश्यन्त्यात्मन्यवस्थितम्।
यतन्तोऽप्यकृतात्मानो नैनं पश्यन्त्यचेतसः।।11।।

यत्न करने वाले योगीजन भी अपने हृदय में स्थित इस आत्मा को तत्त्व से जानते हैं किन्तु जिन्होंने अपने अन्तःकरण को शुद्ध नहीं किया है, ऐसे अज्ञानीजन तो यत्न करते रहने पर भी इस आत्मा को नहीं जानते।(11)

यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम्।
यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम्।।12।।

सूर्य में स्थित जो तेज सम्पूर्ण जगत को प्रकाशित करता है तथा जो तेज चन्द्रमा में है और जो अग्नि में है- उसको तू मेरा ही तेज जान।(12)

गामाविश्य च भूतानि धारयाम्यहमोजसा।
पुष्णामि चौषधीः सर्वाः सोमो भूत्वा रसात्मकः।।13।।

और मैं ही पृथ्वी में प्रवेश करके अपनी शक्ति से सब भूतों को धारण करता हूँ और रसस्वरूप अर्थात् अमृतमय चन्द्रमा होकर सम्पूर्ण औषधियों को अर्थात् वनस्पतियों को पुष्ट करता हूँ।(13)

अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिना देहमाश्रितः।
प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम्।।14।।

मैं ही सब प्राणियों के शरीर में स्थिर रहने वाला प्राण और अपान से संयुक्त वैश्वानर अग्निरूप होकर चार प्रकार के अन्न को पचाता हूँ।(14)

सर्वस्य चाहं हृदि संनिविष्टो
मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च।
वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो
वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम्।।15।।

मैं ही सब प्राणियों के हृदय में अन्तर्यामी रूप से स्थित हूँ तथा मुझसे ही स्मृति, ज्ञान और अपोहन होता है और सब वेदों द्वारा मैं ही जानने के योग्य हूँ तथा वेदान्त का कर्ता और वेदों को जानने वाला भी मैं ही हूँ।(15)

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते।।16।।

इस संसार में नाशवान और अविनाशी भी ये दो प्रकार के पुरुष हैं। इनमें सम्पूर्ण भूतप्राणियों के शरीर तो नाशवान और जीवात्मा अविनाशी कहा जाता है।(16)

उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः।
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः।।17।।

इन दोनों से उत्तम पुरुष तो अन्य ही है, जो तीनों लोकों में प्रवेश करके सबका धारण-पोषण करता है तथा अविनाशी परमेश्वर और परमात्मा- इस प्रकार कहा गया है।(17)

यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः।।18।।

क्योंकि मैं नाशवान जड़वर्ग क्षेत्र से सर्वथा अतीत हूँ और अविनाशी जीवात्मा से भी उत्तम हूँ, इसलिए लोक में और वेद में भी पुरुषोत्तम नाम से प्रसिद्ध हूँ।(18)

यो मामेवमसंमूढो जानाति पुरुषोत्तम्।
स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत।।19।।

भारत ! जो ज्ञानी पुरुष मुझको इस प्रकार तत्त्व से पुरुषोत्तम जानता है, वह सर्वज्ञ पुरुष सब प्रकार से निरन्तर मुझ वासुदेव परमेश्वर को ही भजता है।(19)

इति गुह्यतमं शास्त्रमिदमुक्तं मयानघ।
एतद् बुद्ध्वा बुद्धिमान्स्यात्कृतकृत्यश्च भारत।।20।।

हे निष्पाप अर्जुन ! इस प्रकार यह अति रहस्ययुक्त गोपनीय शास्त्र मेरे द्वारा कहा गया, इसको तत्त्व से जानकर मनुष्य ज्ञानवान और कृतार्थ हो जाता है।(20)

ॐ तत्सदिति श्रीमद् भगवद् गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसंवादे पुरुषोत्तमयोगो नाम पंचदशोऽध्यायः ।।15।।

इस प्रकार उपनिषद, ब्रह्मविद्या तथा योगशास्त्र रूप श्रीमद् भगवद् गीता के
श्रीकृष्ण-अर्जुन संवाद में पुरुषोत्तमयोग नामक पंद्रहवाँ अध्याय संपूर्ण हुआ।

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

(अनुक्रम)